भाग-1

नई कोपलों का सृजन

प्रोफेसर एच.वाय. मोहन राम से सुजाता वरदराजन की बातचीत

प्रोफेसर मोहन राम विविध अभिरुचियों व क्षमताओं के मालिक तो हैं ही, लेकिन इन सबसे ऊपर एक आला दर्ज़े के वनस्पतिशास्त्री हैं। वनस्पतियों में उनकी रुचि, मैसूर में बीते उनके बचपन की देन है; उनके एड्वेंचर हमें आर.के. नारायण के चरित्रों की याद दिलाते हैं। वे दिन थे सीखने (और सिखाने) की एक असाधारण व बहुफलदाई यात्रा की शुरुआत के, ठिठक कर कुछ रोमांस और हो सके तो कुछ पल दमिश्की गुलाब की खुशबू जी लेने के दिन।

सीधी-सरल प्रायोगिक विधियाँ और सूक्ष्म अवलोकन व प्रलेखन, ये सब मोहन राम के काम की पहचान हैं। उन्होंने बड़े विश्वसनीय तरीके से दिखला दिया कि एकदम बुनियादी उपकरणों और बहुत कम पैसों में भी उच्च गुणवत्ता वाला परिवर्तनकारी अनुसंधान किया जा सकता है। 1960 से 1980 के दशकों में अनुदान राशि बहुत कम हुआ करती थी तथा एक सफल रिसर्च के लिए जिज्ञासा व कड़ी मेहनत ज़रूरी थी। अपना काम चुनने व उसे लोगों के सामने रखने की प्रक्रिया में मोहन राम के व्यक्तित्व के कुछ चुनिन्दा पहलू सामने आते हैं - विनयशीलता,

विचारशीलता, और प्रकृति, खासकर पौधों के प्रति विशेष प्रेम। और उनके इस धीरज के नीचे बहता है हास्य का अविरल पर सदा सौम्य एक झरना, जिसमें उनके सहयोगी खूब डूबे-उतराए हैं। शौक उनके और भी हैंः विज्ञान पढ़ाना और उसे लोगों तक ले जाना, फिर संगीत व फोटोग्राफी भी। लेखन व सम्पादन के प्रति उनका सहज रुझान है। निबन्धों, समीक्षात्मक लेखों, स्कूली किताबों व संस्मरणों समेत तकनीकी व अर्ध-तकनीकी साहित्य की समूची ृंखला के लेखन व नियोजन से वे जुड़े रहे हैं। उनके आत्मकथात्मक लेखों से मैं यहाँ कुछ उद्धृत कर रही हूँः

“काश मैं एक पेड़ जैसा होता; गहरी जड़ों के सहारे तन कर खड़ा, ऊँचे तने पर एक चौड़ा छत्र धारण किए, अपने कष्टों, खुद को मिले सारे तिरस्कारों को अनदेखा कर, तमाम परिवर्तनों का डटकर मुकाबला कर, लगातार अवशोषण व संश्लेषण के द्वारा खुशबूदार फूल, स्वादिष्ट फल देता जाता, हमेशा देता जाता, रखने की किसी भी लालसा से परे। इस सब में मैं 1945 के हिरोशिमा नाभिकीय विस्फोट के उत्केन्द्र के करीब ही खड़े गिंको वृक्ष द्वारा उस समय दर्शायी गई असाधारण दृढ़ता को भी जोड़ूँगा, जब अपना तना आसपास की हर चीज़ के साथ-साथ नेस्तनाबूद होने के बाद, वह अपनी जड़ से अंकुरित हो ऊपर को उठा।”

हालाँकि, सम्भवतः बहुत-से लोग उपरोक्त उद्धरण का या तो पहला या बाद का हिस्सा लिख पाए होंगे, लेकिन मेरी जानकारी में मोहन राम के अलावा शायद ही और किसी ने इन दो हिस्सों को आपस में इतनी सुन्दरता से गूँथा होगा।

पौधों के प्रति रुझान

सुजाताः क्या आप हमें अपनी प्रारम्भिक शिक्षा के बारे में बता सकते हैं और यह भी कि किस तरह आपकी रुचि पौधों का अध्ययन करने में विकसित हुई?

मोहन रामः जब मैं छोटा था तब मेरी माँ, जो कि बागवानी में बड़ी रुचि रखती थीं, पौधे रोपने व उनकी देखभाल के काम में मेरी मदद लिया करती थीं। मैं मैसूर में पला-बढ़ा जो कि आज भी मेरे हिसाब से सबसे सुरम्य नगरों में से एक है। आप बस चामुण्डी पहाड़ी या उसके आसपास के इलाकों में तो जाएँ। मैं साइकिल पर सवार हो श्रीरंगपटनम जाया करता और कावेरी नदी में या उसके किनारे उगने वाले या टीपू सुल्तान द्वारा अपने शाही बाग में रोपे गए तमाम दिलचस्प फूल-पौधों को निहारा करता।

हमारे स्कूल में आर.एन. चक्रवर्ती नाम के जीव-विज्ञान के एक बढ़िया शिक्षक हुआ करते थे। मेंढकों के जो निषेचित अण्डे हम लोग पोखर-कुण्डों से प्रयोगशाला में ले आया करते, हमारे ये चक्रवर्ती सर हमें बताते कि किस तरह ये निषेचित अण्डे विकसित होकर टैडपोल और फिर ये टैडपोल मेटामॉर्फोसिस के द्वारा एक वयस्क मेंढक में तब्दील हो जाते हैं। मेरी रुचि मेरे दो और शिक्षकों के चलते भी बढ़ी। एक तो हैं डॉ. एम. अनन्तस्वामी राउ (या फिर एम.ए. राउ, जिस नाम से वे जाने जाते हैं)। सज्जनों के बीच उनकी गिनती एक वनस्पतिशास्त्री के बतौर होती और वनस्पतिशास्त्रियों के बीच एक सज्जन के रूप में। वे बयानवे

वर्ष के हैं पर आज भी बहुत सक्रिय हैं। मेरे दूसरे अध्यापक श्री बी.एन.एन. राव रहे। वे लंदन की रॉयल हॉर्टिकल्चरल सोसाइटी के फेलो रहे। अधिकांश वनस्पतिशास्त्री कहा करते थे कि हमें खेती में उगाए गए पौधों का अध्ययन नहीं करना चाहिए, लेकिन हमारे राव साहब कहते, “देखो, ये पौधे हमारे द्वारा चुने जाकर पाले-पोसे गए हैं। ये बहुत महत्वपूर्ण इसलिए हैं क्योंकि हमें रोज़ इनकी ज़रूरत पड़ती है। तुम लोगों को इनके नाम मालूम होने चाहिए, और यह भी मालूम होना चाहिए कि ये कहाँ से आए, किस तरह से आए वगैरह-वगैरह।” अब चूँकि जंगली प्रजातियाँ, बेहतर घरेलू पौधों हेतु एक वृहद जीन-भण्डार मुहैया कराती हैं सो मूलभूत विविधता के स्रोत महत्वपूर्ण हो जाते हैं।

सुजाताः आपने अपनी बी.एससी. की पढ़ाई कहाँ की?

मोहन रामः मैसूर के सेंट फिलोमेना’स कॉलेज से मैंने अपनी बी.एससी. की। कॉलेज के चारों ओर जंगली पौधों का भण्डार था। हमारा अपना कोई उद्यान न था। इसकी हमें कोई ज़रूरत भी न थी क्योंकि जब चाहे हम अपने कॉलेज के आसपास से अपने अध्ययन के लिए पौधे जुगाड़ लाते।

मैं अपने कॉलेज की प्राकृतिक विज्ञान समिति (नैचुरल साइंस सोसाइटी) का चुना हुआ सचिव था। मैंने तय किया कि हमें कुछ मज़ेदार गतिविधि करनी चाहिए। सो, सर सी.वी. रामन को मैंने एक पत्र लिखा, “हमने एक साइंस क्लब शुरू किया है, क्या आप यहाँ पधारकर उसका उद्घाटन उद्बोधन दे सकते हैं?”

उनका जवाब आया, “ज़रूर, बशर्ते तुम लोग बैंगलोर से वहाँ आने-जाने का मेरा पेट्रोल खर्च वहन कर सको तो।”

मैंने जवाब लिखा, “ठीक है।” अगले ही पल मैंने पूछा, “क्या आप हमें

आपके उद्‌बोधन का शीर्षक भेज सकते हैं, ताकि हम उसकी घोषणा पहले से ही कर सकें?"

प्रत्युत्तर में उन्होंने लिखा, "वह मैं मंच पर ही तय करूँगा।" अब वे एक महान वैज्ञानिक तो थे ही, लिहाज़ा हमें उनकी बात माननी ही पड़ी।

उद्‌बोधन के दिन मंच की मेज़ पर हमने एक सुन्दर-सा शंख रखा था। उन्होंने उसे उठाया और उसी पर अपना भाषण देना शुरू कर दिया, "मेरे आज के व्याख्यान का विषय है प्रकृति में समरूपता। सीपियों/शंखों में ही नहीं, बल्कि जैविकीय महत्व वाले अणुओं में भी बायाँपन व दाहिनापन।" वे करीब एक घण्टे तक बोले। हम पर तो जैसे कोई जादू ही चल गया था। उन दिनों एल.सी.डी. प्रोजेक्टर्स क्या, स्लाइड प्रोजेक्टर या एपिडायास्कोप भी न थे। क्या तो वक्ता थे वे! उनके व्याख्यान का हरेक छात्र पर ज़बरदस्त असर पड़ा। हमारा कॉलेज शहर की सीमा के बाहर पड़ता था। उन्होंने मुझसे पूछा, "सचिव साहब, मैं ज़रा शहर के भीतर जाना चाहूँगा, क्या इसके लिए मैं आपका पेट्रोल खर्च कर सकता हूँ?"

मैं बोला, "कोई दिक्कत नहीं, सर।" सारे छात्र हँस दिए। रामन साहब हँसी से सराबोर थे और उन्होंने हमारे दिमाग ही नहीं, हमारे दिलों को भी झंकृत कर दिया था!

उन्होंने मुझसे एक और बात कही, "देखो, तुम्हें मुझसे एक वादा करना होगा।"

मैंने पूछा, "क्या?"

"जब तुम एक वैज्ञानिक या एक शिक्षक बनो, तो तुम्हें यदि विद्यार्थियों या बच्चों को व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया जाए तो उसके लिए तुम तुरन्त हामी भर दोगे। क्या तुम मुझसे यह वादा कर सकते हो?"

मैं बोला, "हाँ।"

सी.वी. रामन

मुझे यह बात हमेशा याद रही। वे एक नोबल पुरस्कार प्राप्त वैज्ञानिक थे, लेकिन युवाओं के प्रति उनका रवैया बड़ा अच्छा रहता था। दुनिया के सबसे अद्‌भुत कामों में से एक जो आप कर सकते हैं वह है बच्चों के साथ वार्तालाप कर सकना और प्रकृति के प्रति उत्साह व कौतुक का एक माहौल बना पाना। एक बार मुझे सी.सी.एम.बी. (सेंटर फॉर सेलल्युलर एंड मॉलिक्युलर बायोलॉजी) के तत्कालीन निदेशक डॉ. डी. बालासुब्रह्मण्यन द्वारा राष्ट्रीय विज्ञान दिवस पर सी.सी.एम.बी. पधारने का न्यौता मिला। मुझे उनके परिसर का भ्रमण करते हुए वहाँ के बच्चों के साथ बातचीत करनी थी। अब जो बात एक घण्टे में खत्म होनी थी, कोई चार घण्टे तक चली!

पहला पेशा और वनस्पतिशास्त्र

कॉलेज में मेरा प्रदर्शन काफी अच्छा रहा, और परीक्षा के परिणाम आने से पहले ही हमारे प्रिंसिपल श्री सी.जे. वर्की ने मुझसे कहा, “तुम्हें कॉलेज में डिमॉन्स्ट्रेटर के पद पर काम करना शुरू कर देना चाहिए।” वर्की साहब स्वतंत्रता-पूर्व मद्रास में बुनियादी शिक्षा का प्रारूप बनाने के काम में महात्मा गाँधी के एक करीबी सहयोगी रहे हैं।

मैंने पूछा, “मुझे कौन-सा विषय पढ़ाना चाहिए?”

उनका जवाब था, “किसी भी विज्ञान विभाग के प्रमुख से जाकर मिलो। जो कोई तुम्हें रखना चाहे, उसके साथ काम करना शुरू कर दो।”

तिस पर मैं बॉटनी डिपार्टमेंट गया। न जाने क्यों, बड़ी-बड़ी आँखों व रोएँदार ललरियों वाले वनस्पतिशास्त्र के प्रोफेसर कोई जादूगर से दिखाई पड़ते थे। बड़े मज़ेदार इन्सान थे वे, कला व रंगमंच में अत्यन्त रुचि रखने वाले। मेरे कन्धे पर हाथ रखकर बोले, “मेरे विभाग में तुम्हारा स्वागत है। लेकिन एक शर्त है। तुम्हें मेरी कुछ थ्योरी क्लासेस भी लेनी पड़ेंगी।” मैं बोला, “ठीक।” सो इस तरह मैंने 75 रु. मासिक की तनख्वाह पर वनस्पतिशास्त्र के डिमॉन्स्ट्रेटर के बतौर अपना कॅरिअर शुरू किया।

उस वक्त मैं कोई 19 बरस कुछ महीने का था। मैंने एक साल तक पढ़ाया और इसके चलते मुझे वास्तव में, काफी हद तक बुनियादी बॉटनी सीखनी पड़ी। बड़ा ही कठिन समय था वह, कारण कि द्वितीय वर्ष के कोई आधे छात्र तो मेरे सहपाठी रह चुके थे जो या तो मैट्रिक के दौरान या फिर इण्टरमीडिएट में फेल हो गए थे। लेकिन अध्यापन

के उस एक साल के अनुभव ने मुझे इस कदर रोमांचित किया कि मेरा सारा जीवन ही बदल डाला। सो इस तरह बॉटनी की दुनिया में मेरा प्रवेश हुआ।

डॉक्टरी की पढ़ाई करने में मेरी बड़ी रुचि थी, लेकिन मुझे दाखिला न मिला। लेकिन पीछे मुड़कर देखने पर एक वनस्पतिशास्त्री होने का मुझे ज़रा भी रंज नहीं, खासकर बतौर एक शिक्षक।

एम.एससी. की पढ़ाई

सुजाताः इसके बाद आपने क्या किया?

मोहन रामः ओह, कुछ अधिक ही चाहने वाले मेरे कुछ अध्यापकों ने मुझे चेताया, “लगता है डिमॉन्स्ट्रेटर होने का रुतबा तुम्हें खूब भा रहा है, इतना कि हमें डर है कि उम्र-भर तुम केवल डिमॉन्स्ट्रेटर ही न बने रह जाओ। बहुत हो गया है, छोड़ो भी अब ये और जाओ, जाकर अपना एम.एससी. करो।”

मैंने पूछा, “मुझे कहाँ जाना चाहिए?”

सौभाग्य से मेरे एक मित्र होते थे एन.के. नागराजा राव, जो अभी हाल ही में गुज़र गए। उनके भाई डॉ. एन.के. अनन्त राव आगरा के बलवन्त राजपूत कॉलेज में कृषि-विज्ञान पढ़ाते थे। बलवन्त राजपूत कॉलेज उन दिनों इतना जाना-पहचाना नाम न था। लेकिन वहाँ डॉ. आर.के. सिंह थे, एक अद्‌भुत व्यक्ति और कॉलेज के प्राचार्य। केवल अट्‌ठाईस या उनतीस साल की छोटी उम्र ही में वह प्राचार्य पद पर नियुक्त हुए थे। डॉ. सिंह ने शिक्षा में अपनी पीएच.डी. हार्वर्ड यूनिवर्सिटी से, शिक्षा की अपनी दार्शनिक अवधारणाओं के लिए ख्यात जॉन ड्यूई के मार्गदर्शन में की थी। डॉ. सिंह ने अपने अमेरिका प्रवास के दौरान देखा था कि अमेरिकी विद्यार्थी अपनी पढ़ाई का खर्चा निकालने के लिए कितनी ज़द्दोजहद करते हैं। इसलिए वे इस बात से पूरी तरह सहमत थे कि भारत में भी उन मेधावी छात्रों को हमें अंशकालिक काम मुहैया कराने होंगे जिन्हें अपनी पढ़ाई का खर्च उठाने में दिक्कतें आती हैं।

मेरे मित्र के भाई ने उनसे मेरा ज़िक्र छेड़ा। डॉ. सिंह ने कहा, “आने दो उसे। पर मैं उसे फकत 50 रु. महीना दे सकता हूँ। बाकी खर्चा उसे अपने बूते ही उठाना होगा।”

यह मदद बड़े काम आई। पचास रुपए और मेरे सबसे बड़े भाई, शारदा प्रसाद द्वारा भेजे जाते रहे, और बड़े भैया ने आजीवन यह बात किसी

को नहीं बताई। मैं सुबह 7 से 10 के बीच इण्टर की प्रैक्टिकल क्लास लिया करता। इसके बाद 10 से लेकर शाम 5 या 6 बजे तक मैं अपनी एम.एससी. की पढ़ाई किया करता। सो, इस तरह मैंने अपनी एम.एससी. पूरी की। कॉलेज में संसाधनों की कमी थी, लेकिन अध्यापक उत्तम थे। हमारे विभागाध्यक्ष प्रो. बहादुर सिंह, श्री पी. महेश्वरी के छात्र रह चुके थे जब महेश्वरी 1930 के दशक में आगरा में हुआ करते थे।

एम.एससी. करने के बाद मैं अपने मैसूर के पुराने कॉलेज चला आया। नौकरी के लिए मैंने यहाँ-वहाँ अपनी अर्ज़ी भेजी थी। मेरे उन पसन्दीदा कॉलेजों में से एक जहाँ मैं जाना चाहता था, बेलगाम का लिंगराज कॉलेज था। ए.के. रामानुजन वहीं पढ़ाते थे। वे एक कवि और विद्वान थे और आगे चलकर वे 'यूनिवर्सिटी ऑफ शिकागो' चले गए। उनकी साहित्यिक रचनाएँ, खास तौर पर उनके द्वारा प्राचीन तमिल कविताओं व भारतीय कथाओं के किए गए अनुवाद तो जग-प्रसिद्ध हैं। रामानुजन और मैं एक-दूसरे को जानते थे, और उनकी बड़ी इच्छा थी कि हम लोग बेलगाम में एक साथ काम करें और एक प्रबुद्ध जीवन बिताएँ। पर दुर्भाग्य से मेरा चयन वहाँ नहीं हुआ और रामानुजन इससे दुखी हो चले। बहरहाल, मैं मैसूर लौट आया और कुछ ही हफ्तों में मुझे दिल्ली विश्वविद्यालय से बुलावा आया कि मैं वहाँ लेक्चरर पद के साक्षात्कार हेतु उपस्थित होऊँ। मेरी जेब में कुछ पैसे थे, सो मैंने अपने आपसे कहा, "चलो दिल्ली चलें, देखें तो सही, होता है क्या। पता नहीं कि चुन लिया जाऊँ।" मैं अभी कॉलेज से निकला-निकला ही था, और पीएच.डी. भी न था।

10 अक्टूबर 1953 को वहाँ मेरा इंटरव्यू हुआ। अगर मेरी याद सही है तो वह शनिवार का दिन था। मैं दो दिन पहले ही पहुँच गया था और बहुत सारे पेड़ों का मुआयना करते हुए यूनिवर्सिटी गार्डन का एक चक्कर भी लगा चुका था। दिल्ली यूनिवर्सिटी का परिसर कभी वाइसरॉय का घर व उनकी जागीर हुआ करता था। आज भी यहाँ काफी सुन्दर पेड़ हैं।

इंटरव्यू पैनल पर वाइस चांसलर के अलावा पी. महेश्वरी, बी.पी. पाल, और हाँ, बनारस के परिस्थितिकी-विज्ञानी (इकॉलॉजिस्ट), श्री रामदेव मिश्र भी थे। उनने मुझसे पूछा कि इंटरव्यू के लिए आते समय क्या मैंने कोई पेड़ देखे। मैंने भी धड़ाधड़ तमाम पेड़ों के नाम और उनके संक्षिप्त विवरण देने शुरू कर दिए। इंटरव्यू कमिटी ने कोई 50 मिनट तक मेरी कड़ी परीक्षा ली। महेश्वरी जी ने मुझसे कहा, "सोमवार से काम शुरू कर दो।"

मैं चिहुँका, “तो मेरा सिलेक्शन हो गया!” मुझे इस बात का ज़रा भी विश्वास न था कि कोई मुझे ले सकता है, कारण कि मैं अभी बहुत कच्चा था। मैंने उनसे कहा, “मैं मैसूर के एक कॉलेज में काम कर रहा हूँ और मैंने उन्हें बताया भी नहीं है कि मैं यहाँ आ रहा हूँ। इसलिए मेरा फर्ज़ बनता है कि मैं वापस वहाँ जाऊँ, उन्हें बताऊँ, त्यागपत्र दूँ, और तब यहाँ आऊँ।”

महेश्वरी जी ने कहा, “कोई बात नहीं। मैं तुम्हारे प्रिंसिपल को चिट्ठी लिख दूँगा।”

इस तरह मैं पलट कर मैसूर न गया। महेश्वरी जी ने यह कहते हुए एक पत्र भेजा, “आशा करता हूँ आपको यह जानकर प्रसन्नता होगी कि हमने आपके एक विद्यार्थी को व्याख्याता के पद पर रख लिया है।”

मेरे खयाल से मैं बड़ा भाग्यशाली था कि मुझे चुन लिया गया। पर सोमवार को जब मैं प्रोफेसर के पास गया तो उन्होंने जो सबसे पहला काम मुझे करने को कहा वह था प्लांट एम्ब्रियोलॉजी पढ़ाना। महेश्वरी जी तो प्लांट एम्ब्रियोलॉजी के लिए विश्व विख्यात थे। सम्भवतः मॅक्ग्रा-हिल, यू.एस.ए. द्वारा किसी भारतीय लेखक की प्रकाशित सबसे पहली पुस्तक ‘ऍन इंट्रोडक्शन टु द एम्ब्रियोलॉजी ऑफ एंजिओस्पर्म्स’ उन्हीं की थी। भ्रूणविज्ञान पर एक प्रकार की बाइबिल लिखने वाला

एच.वाय. मोहन राम कृषि वैज्ञानिकों के साथ।

व्यक्ति मुझसे भ्रूणविज्ञान पढ़ाने को कह रहा था!

मैंने कहा, “ये कैसे हो सकता है? यह विषय तो मैं आपसे सीखने यहाँ आया हूँ।”

वे बोले, “यही तो सबसे उम्दा तरीका है सीखने का। क्लास लेने से पहले तुम्हारे हर लेक्चर की रूपरेखा के बारे में मेरे साथ बातचीत करना न भूलना।”

मुझे बहुत मेहनत करनी पड़ी। वे कठोर परिश्रम करवाने वाले अध्यापक थे। मैंने अपना नाम पीएच.डी. के लिए दर्ज़ करवा लिया। स्नातक व स्नातकोत्तर कक्षाएँ मिलाकर सप्ताह-भर में मुझे 24 घण्टे पढ़ाना होता था। अपने अनुसंधान कार्य के साथ-साथ मुझे हर्बेरिअम (वनस्पति-संग्रहालय) व उद्यानशाला की देखभाल भी करनी होती थी। न कोई रविवार था मेरे लिए और न ही कोई छुट्टी।

उस समय, डिपार्टमेंट में एक बंगाली शोधकर्ता, मानसी घोष अपनी पीएच.डी. के लिए प्रो. बी.एम. जोहरी के साथ काम कर रही थीं। मानसी एक प्रतिभाशाली व होशियार शोधकर्ता थीं। हम एक-दूसरे को पसन्द करते थे और हमने तय किया कि ज्यों ही हममें से कोई एक अपनी पीएच.डी. थीसिस जमा करता है, हम शादी कर लेंगे। मानसी की थीसिस पहले दर्ज़ हुई। बस फिर क्या था, हम दोनों ने शादी कर ली।

सुजाता: पीएच.डी. के बाद आपने क्या किया?

मोहन राम: सन् 1958 में मैंने ‘फुलब्राइट एंड स्मिथ मंट स्कॉलरशिप’ के लिए अपना आवेदन दिया। मेरा चयन हुआ और पानी के जहाज़ के ज़रिए मैं अमेरिका पहुँचा जहाँ मुझे प्रो. एफ.सी. स्टुवर्ड के साथ काम करने के लिए कॉर्नेल यूनिवर्सिटी भेजा गया। उन्होंने मुझसे कहा, “देखो भई, तुम यहाँ एक साल तक रहने वाले हो। मैं इसे दो साल किए देता हूँ।” वे कहने लगे, “मैं तुम्हें एसोसिएटशिप दूँगा, फिर चाहे तुम्हारी फुलब्राइट स्कॉलरशिप आए या न आए। मैं चाहता हूँ कि कुछ अच्छे पर्चे छपवाने के बाद ही तुम वापस हिन्दुस्तान लौटो। सबसे पहले तो तुम भारत में अपनी पीएच.डी. से जुड़े काम पर शोध-पत्र तैयार करो।”

सो मैं वहीं जम गया और खूब सारे पर्चे लिखे, उन्हें तमाम जाने-माने अमेरिकी जर्नलों में छपवाया। इस पर उन्हें समझ में आ गया कि महेश्वरी जी के मार्गदर्शन में सम्पादन व प्रूफरीडिंग का मुझे अच्छा अभ्यास हो चुका है। इसको देखते हुए वे बोले, “मैं पादप क्रियाविज्ञान (प्लांट फिज़िऑलॉजी) पर एक दस-अंकीय विश्वकोष (एनसाइक्लोपीडिआ)

बनाना चाहता हूँ। अब चूँकि, तुम यहाँ हो ही, सो अभी शुरू कर देते हैं। पहले तीन अंकों को तैयार करने में मेरी मदद करो, और जब तक तुम्हारे लौटने का वक्त आएगा, तब तक तुम इस विषय पर काफी कुछ जान चुके होगे।"

मैं खुश हुआ, पर यह नहीं जानता था कि इसके लिए मुझे अपने रोज़ाना के कार्य-घण्टों में बढ़ोत्तरी करनी पड़ेगी।

दिन के वक्त मैं अपनी रिसर्च कर रहा होता। रात का खाना खाने के बाद वापस अपनी प्रयोगशाला पहुँचता और अगले छह घण्टे वहीं बिताता। मुझे लाइब्रेरी जाकर बहुत-सी किताबें भी पढ़नी होतीं। इस दौरान मेरी मुलाकात 'ऐकडेमिक प्रेस' की सम्पादकीय टीम से हुई। वे लोग मेरे सम्पादन व प्रूफरीडिंग काम की गुणवत्ता से खुश थे। यह भी मेरे लिए एक सकारात्मक बात रही।

(अगले अंक में भी जारी)

एच.वाय. मोहन रामः प्लांट ग्रोथ एंड डेवलपमेंटल तथा इकोनॉमिक बॉटनी में विशेषज्ञता। केला, बांस, दलहन एवं इमारती लकड़ी वाले वृक्षों पर काम किया है। अनेक सम्मान एवं अवार्ड भी प्राप्त हुए हैं।

सुजाता वरदराजनः येल युनिवर्सिटी, कनेक्टिकट, अमरीका से मॉलिक्युलर बायोफिज़िक्स एंड बायोकेमेस्ट्री में पढ़ाई की है। स्वतंत्र लेखक हैं। योग और कविताओं सहित विविध अभिरुचियों की धनी हैं।

अँग्रेज़ी से अनुवादः मनोहर नोतानीः शिक्षा से स्नातकोत्तर इंजीनियर। पिछले 20 वर्षों से अनुवाद व सम्पादन उद्यम से स्वतंत्र रूप से जुड़े हैं। भोपाल में रहते हैं।

मूल लेख 'रेज़ोनेंस' पत्रिका के अंक, अक्टूबर 2009, खण्ड 14 में प्रकाशित हुआ था।